Part II MOD
P- III

देवराज सम्प्रदाय पर प्रकाश डाले ?

Ques. What do you Know about the Cast of Devaraja

भारत के पौराणिक हिन्दू धर्म में कम्बुज देश में एक नये सम्प्रदाय का विकास हुआ जिसे देवराज या ख्मेर में कमतेअंगजगता राजे कहा जाता है। इसमें शिवलिंग का ऊँचाई स्थान, जिसमें कैलाश का संकेत हो, पर स्थापना तंत्रवद्ध की क्रियाओं तथा सम्राट में देवत्वस्वरूप मानकर मरने पर उसकी मूर्ति स्थापित करना इत्यादि का समावेश है। इसका उल्लेख स्डाक-काक लेख में मिलता है।

देवराज सम्प्रदाय के विषय में विभिन्न विभिन्न विद्वानों ने अपना मत विभिन्न विभिन्न प्रकार से दिया है। बोस का कथन है कि यह कम्बुज देश से मध्य जावा में आया था और चम्पा में भी फैला। डा०मजुमदार का कहना है कि इस मत पर निश्चित रूप से कोई धारणा नहीं बनायी जा सकती है। इसके अन्तर्गत राजकीय प्रशासन का मुख्य अंग शिव की मूर्ति को माना गया है। उसके शिक्षण के लिए भारत से हिरण्यदामा कम्बुज देश आया था। स्डाककाक अनुसार कम्बुज पर जावा का प्रभाव हटाने का उल्लेख है। सम्भव है कि इस सम्प्रदाय का विकास धार्मिक भावनाओं के अतिरिक्त राजनीतिक भावनाओं के कारण भी हुआ। धीरे-धीरे इसमें अन्य भावनाओं का भी प्रवेश हुआ जिसमें सम्राट को देवस्वरूप दिया और उसके मरने के बाद उसकी मूर्ति स्थापित करना।

इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण उदयादित्य-वर्मन का स्डोक-काक लेख है। इसमें वर्णन है कि सम्राट जयवर्मन जब जावा से लौटा था तब राजकीय देवता जिसे ख्मेर में कम्यते-त राज और संस्कृत में देवराज कहते हैं को स्थापित किया। सम्राट ने ब्रह्मविनाशिख संस्कार के लिए हिरण्यदाम नामक ब्राह्मण को जनपद (सम्भवतः भारत) से बुलाया था। उसने इस देवता के निमित्त पूजा करने के लिए वहाँ का राज पुरोहित शिवकैवल्य को 'ब्रह्मविनाशिख' नयोत्त, सम्मोह और शिरश्छेद की शिक्षा दी। लेख में वर्णन है कि शिवकैवल्य और उसके

ही उस देवता की पूजा करेगा। यही कारण है कि 250 वर्षों तक शिवकैवल्य के वंशज राजपुरोहित के पद पर आसीन रहे। लेख से ज्ञात होता है कि बार-बार देवता की मूर्ति कम्बुजसम्राट भिन्न-भिन्न स्थानों में ले गया। लिंग रूप में सम्राट को इस मूर्ति की स्थापना करने का उद्देश्य यह था कि कम्बुज जावा पर आधारित न रहे। जब सम्राट महेन्द्र पर्वत से हरिहरालय गये तो देवराज की मूर्ति वहाँ लायी गयी। यशोवर्मन के समय में यह यशोधपुर गयी। शिवकैवल्य के भतीजे वाम शिव सम्राट के साथ इस मूर्ति की स्थापना मध्य पहाड़ी की मंदिर में की थी।

इस लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजकीय देवता की मूर्ति भी राजधानी के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान ले जायी जाती थी। और इसके साथ ही एक ही कुल के राजपुरोहित अपना स्थान बदलते रहते थे। नयी राजधानियों में भी लिंग मूर्ति की पुनः स्थापना के लिए एक उच्च निर्धारित स्थान चुना जाता था तथा राजपुरोहित को भी अपना पूर्ण निवास बनाने के लिए भूमि तथा मुद्राओं को दान स्वरूप प्रदान किया जाता था। ख्मेर, खो, खेर, फिमानक, बफ़न, तथा अंकोर थाम के बे-ओन का निर्माण इसी हेतु हुआ था। खो-खेर में जयवर्मन ने शक सम्वत् 843 में एक बहुत ऊँचा मंजिल का एक पिरामिड का निर्माण करवाया। उस पर राजकीय लिंग के त्रिभुवनेश्वर नाम से स्थापित की। लेख में जयवर्मन द्वारा त्रिभुवनेश्वर के प्राप्ति किये गये दानों का उल्लेख है। उन्हीं के प्रसाद से वह सम्राट हुआ था। पूर्वी गोपुरम पर अंकित ख्मेर लेख में शिखा बिन्दु और श्री विरेन्द्रसिमथन द्वारा कम्रते अंग जगत् राज देवराज की लिंग मूर्ति के प्रतिष्ठान का उल्लेख है।

राजेन्द्र वर्मन के मे-बो लेख में इस राजकीय मत के विषय में और भी वृतान्त मिलता है। यशोवर्मन द्वारा निर्मित यशोधपुर में राजेन्द्रवर्मन ने एक मंदिर बनवाया। उसके चारों ओर पर अपने माता-पिता को

शिव और उमा तथा विष्णु और ब्रह्मा के रूप में मूर्तियाँ चारों ओर पर अपने माता पिता को शिव और विष्णु और ब्रह्म के रूप में मूर्तियाँ स्थापित की, और बीच में राजशेखर नाम से लिंग स्थापित किया। शक सं० ८८३ (८६१ के प्र० रूप के लेख से ज्ञात होता है कि एक मंदिर कराया गया जिसमें राजमदेश्वर नाम से लिंग की स्थापना की गयी। इसके अलावा चार और मंदिर की स्थापना की गयी जिसमें दो शिव तथा दो में उमा और विष्णु की मूर्ति स्थापित की गयी। संभवतया ये चारों कोनो पर बनाये गये थे और बीच में राजकीय देवता की मंदिर थी। उमा की मूर्ति उसकी मौसी जयदेवी (हर्षवर्मन की माँ) और ईश्वर राजेन्द्रवर्मेश्वर से उसके मौसेरे भाई हर्षवर्मन का संकेत था। इस लेख से ज्ञात होता है कि राजकीय देवता के साथ पूर्वजों की भी मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। इस सम्बन्ध में पूर्वजों की मूर्तियाँ स्थापित करना भी देवराज मत का एक अंग था इसी से सम्बन्धित एक अन्य भावना के अन्तर्गत राजाओं को उनकी मृत्यु के बाद दूसरा नाम दिया जाता था। जिससे यह प्रतीक है कि उन्होंने देवत्वस्वरूप प्राप्त कर लिया है। कहना न होगा कि देवराज सम्प्रदाय की पूजा विधि का मूल स्रोत और वहाँ के शैवधर्म से एक तांत्रिक मत से ही उसका ग्रहण किया गया था। अनेक विद्वानों ने यह प्रतिपादित किया है कि दिवंगत राजा और उनके पूर्वजों को दैवी मानकर देवता के रूप में उनकी मूर्तियाँ स्थापित करने की पद्धति भी भारत से ही ली गयी है। भारतीय कुषाण शासकों को देवपुत्र कहा गया है। डा० टामस के मतानुसार देवपुत्र की उपाधि चीनी टिटल गू पर आधारित है जिसका अर्थ स्वर्गपुत्र है और संसार में राजवंश में उत्पन्न होने वाले स्वर्ग में रहते थे। अतः देवपुत्र भारतीय परम्परा पर आधारित है। यह भारतीय नामकरण अथवा उपाधि है जिसे अन्य शासकों ने भी ग्रहण किया। इसमें शासकों को देवपुत्र के प्रश्न पर विचार किया गया है। राजवंश में पैदा होने से पहले

रूप देवताओं के लोक में रहते थे और वहाँ के उन देवताओं के अंश से बनकर वे पृथ्वी लोक पर आते थे। मनु ने भी राजा के देवत्व स्वरूप का उल्लेख किया है। कम्बुज के लेख में देवयुग के स्थान पर देवराज शब्द का प्रयोग किया गया है। संभवतः देवराज और देवयुग दोनों पर्यायवाची थे। लिंग रूप में यह शिव का प्रतीक है। इतना ही नहीं देवयुग शिव का भी नाम है। भारतीय लेखों में देवराज की उपाधि कई राजाओं को दी गयी। जैसे चन्द्रगुप्त को साँची के आम्रकार्दव लेखों में देवराज की उपाधि. अभिलेख में देवयुग कहा गया है। राजा के देवत्वस्वरूप का उल्लेख कम्बुज और जावा में भी पाते हैं। चम्पा के डोंगडुओंग लेख राजाओं को पृथ्वी पर शासन करते देवता माना गया है। चम्पा के इन्द्रवर्मन प्रथम के यांग तिकुह लेख में सम्राट को चन्द्र, इन्द्र, अग्नि यम और कुबेर के विग्रह अथवा शरीर का अंश माना गया है। पो-नगर के एक लेख में सम्राट के चरणों का ब्राह्मणों द्वारा स्पर्श करने का संकेत वर्णन है। इस प्रकार सम्राट का देवत्वस्वरूप मानने की भावना मध्यजावा के चंगल और दिनाय के लेखों से भी प्रतीत होता है। इसमें राजवंश और महेश्वर देता के बीच सम्बन्ध का संकेत है। मृतक शासक इस लोक में देवता का प्रतीक माना जाता था। देवता और शासक के बीच ब्राह्मण और पुरोहित सदा सम्पर्क स्थापित करनेवाला रहा है। यही कारण है कि कम्बुज में हिरण्यदामा के शिष्य और उसके वंशज 250 वर्षों तक इसी पद पर रहे। चम्पा में भृगु ऋषि और मध्य जावा में अगस्त्य ऋषि देवता और सम्राट के बीच मध्यस्थ माने जाते थे।

सम्राट की मूर्ति स्थापित करना भी इसी मत का अंग था। ऐसे बहुत से लेख मिलते हैं जिसमें मंदिरों में पूर्वजों की मूर्ति स्थापित करने का वर्णन है।

दिवंगत पूर्वजों को मूर्ति बनाने और उन्हें देवता का स्वरूप देकर पूजा करने की भावना से उन्हें मंदिर में प्रतिस्थापित करने की प्रथा भारत में भी विद्यमान थी। कौ-

भास के नाटक में प्रतिमा नाटक में प्रतिमा मंडल में दशरथ की मूर्ति को अन्य पूर्वजों की मूर्तियों के पास रखने का उल्लेख है। मथुरा में हुविष्क की देवशाला प्रसिद्ध थी जहाँ कुषाण सम्राट की मूर्तियाँ थी और जहाँ चष्टन और कनिष्क की भी मूर्तियाँ मिली। राजतरंगिणी में सुरा नामक व्यक्ति द्वारा विष्णु के मंदिर के निर्माण का उल्लेख है और उस मूर्ति का नाम सूर्यवर्म स्वामिन कहा गया है। एक गुर्जर प्रतिहार के लेख में भी अलद्वारा विष्णु मंदिर में स्थापित विष्णु के मूर्ति को वेल्लभट्ट स्वामिन के नाम से संबोधित किया गया है। इसी प्रकार पृथ्वी सेन नामक ब्राह्मण के नाम से पृथ्वीश्वर देवता की मूर्ति का निर्माण किया गया है। सम्राट के अलावा, गुरुजन तथा वीर सैनिकों की मूर्ति स्थापना का भी विवरण मिलता है। यह उसके जीवनकाल या मृत्यु के बाद की जाती थी। स्डोक-काक लेख में उदयादित्य वर्मन द्वारा उसके गुरु जयेन्द्रवर्मन के जीवनकाल में ही जयेन्द्रवर्मेश्वर नाम से लिंग स्थापना की गयी। वन्ते चमर के लेख से ज्ञात होता है कि भरत राहु के विद्रोह में जिन सैनिकों ने अपने प्राणों की आहुति दी उनको यशोवर्मन ने अनन्त की उपाधि प्रदान की तथा उनकी मूर्तियाँ मंदिर के विभिन्न कमरों में स्थापित की।